[2018] 14 एस. सी. आर. 78

राज्य (दिल्ली की एन. सी. टी. सरकार)

बनाम

पंकज चौधरी और अन्य

(आपराधिक अपील सं. 2299/ 2009)

30 अक्टूबर, 2018

[आर**.** भानुमति और इंदिरा बनर्जी**,** न्यायाधीशगण**]**

दंड संहिता, 1860 – धारा 376 (2) (g)-अभियोजन पक्ष का मामला कि अभियोजक के पड़ोस में रहने वाले आरोपी-प्रतिवादी 28.07.1997 को लगभग 9 बजे उसकी झुग्गी में घुस गए और उसके साथ बलात्कार किया- विचारण न्यायालय ने प्रतिवादियों को दोषी ठहराया- उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया और प्रतिवादियों के खिलाफ झूठा मामला गढ़ने के लिए पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के निर्देश जारी किए- प्रतिवादियों की याचिका कि अभियोजक खराब चरित्र की थी और वेश्यावृत्ति में लिप्त थी और चूंकि उन्होंने उसके खिलाफ शिकायत दर्ज की थी, इसलिए उन्हें गलत तरीके से फंसाया गया- अभिनिर्धारित किया गयाः विचारण न्यायालय, जिसे अभियोजक का निरीक्षण करने का अवसर मिला था, ने अभियोजक की गवाही को उसकी मां के साक्ष्य, चिकित्सा साक्ष्य, एफएसएल रिपोर्ट और अन्य परिस्थितियों जैसे कि किसी भी झूठे निहितार्थ के लिए उद्देश्य की अनुपस्थिति आदि से विश्वसनीय पाया- उच्च न्यायालय का तर्क कि अभियोजक को कुछ महिलाओं के साथ एक प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 (अभियोजक सहित यौनकर्मियों से जुड़े 28.07.1997 को 07.30 बजे के झगड़े के संबंध में दर्ज) के संबंध में गिरफ्तार किया गया था और कि महिलाओं को 9.20 पीएम तक पुलिस की हिरासत में रहना चाहिए था, अनुमानित आधार पर आगे बढ़ना और अनुमान लगाना- DWs 1 और 2 के साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अभियोजक को पुलिस ने 28.07.1997 को लगभग 08.20 बजे छोड़ दिया था- उच्च न्यायालय

उनकी गवाही की सराहना करने में विफल रहा – केवल यह तथ्य की प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 रात 9.20 बजे दर्ज की गयी थी, यह नहीं दर्शाता है कि अभियोजक और अन्य झगडालू महिलाएं 28.07.1997 को रात 9.30 बजे तक पुलिस हिरासत में थी (उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपराध के सम्बन्ध में)- उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के तथ्यों में गहरा भरोसा जताना सही नहीं था – उच्च न्यायालय अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गयी सामग्रियों पर विचार करने में गलती की जैसे की अभियोजक और अन्य महिलाओं के खिलाफ की गयी कथित शिकायतों में आरोप लगाया गया है कि वे वेश्यावृत्ति में शामिल थीं- यहां तक कि यह मानते हुए कि अभियोजक सहज गुणी थी, उसे किसी क ी साथ यौन संबंध बनाने से इनकार करने का अधिकार है-इसके अलावा, पुलिस अधिकारियों को सुने बिना और अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, उच्च न्यायालय पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करने का निर्देश जारी करने में सही नहीं था- उच्च न्यायालय के फैसले को अपास्त किया गया- प्रतिवादियो की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 391- अंतर्गत शक्ति – दायरे में – चर्चा की गई।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 340 के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए पूर्व शर्तें- चर्चा की गई।

साक्ष्य- बलात्कार- अभियोजक की एकमात्र गवाही- प्रशंसा- चर्चा की गई।

अपीलों का निपटारा करते हुए**,** न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया : 1. 1 अभियोजक के साक्ष्य की पुष्टि एम**.**एल**.**सी**.** द्वारा की जाती है। अभियोजक के साक्ष्य की पुष्टि एफ**.**एस**.**एल**.**रिपोर्ट द्वारा भी की जाती है जो अभियोजक के पेटीकोट पर मानव वीर्य की उपस्थिति को दर्शाता है। **[पैराज 13, 15] [87-**एफ**; 88-**सी**]**

1.2 अभियोजक का अभियुक्त को गलत तरीके से फंसाने का कोई उद्देश्य नहीं था। धारा **313 Cr.P.C** के तहत अपने बयान में**,**

प्रतिवादियों/अभियुक्तों ने कहा है कि अभियोजक खराब चरित्र **की थी** और वह वेश्यावृत्ति में लिप्त थी जिसके **सम्बन्ध** में उन्होंने उसके खिलाफ शिकायत दर्ज कराई है और उन्हें मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है। जैसा कि **विचारण न्यायालय** ने **इंगित किया,** अभियुक्तों द्वारा यह दिखाने के लिए कुछ भी **अभिलेख** पर नहीं लाया गया कि उन्होंने अभियोजक के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई है। झुग्गी क्षेत्र के अध्यक्ष डीडब्ल्यू**-1** ने कहा कि अभियोजक सहित लगभग **7** से **8** महिलाएं वेश्यावृत्ति में लिप्त हैं**,** जिसके बारे में **उसने** शिकायत दर्ज कराई है। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि अभियुक्त अभियोजक और अन्य महिलाओं के खिलाफ ऐसी शिकायतें करने में किसी भी तरह से शामिल थे। यह कथन कि उन्होंने अभियोजक के खिलाफ शिकायत दर्ज की और इसलिए**,** उन्हें मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है**,** किसी भी **अभिलेख** द्वारा प्रमाणित नहीं है। **[**पैरा **20] [90-**सी**-**ई**]**

1.3 धारा **391 Cr.P.C** के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग बहुत सावधानी और **सतर्कता** के साथ किया जाना चाहिए। किसी भी अपील से निपटने में**,** अपीलीय न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य का उल्लेख कर सकता है केवल अगर धारा **391 Cr.P.C** के तहत प्रदान की गई किसी भी सामग्री को दर्ज किया गया है। किसी भी पक्ष द्वारा अंतराल को भरने के लिए अपीलीय **न्यायालय** के समक्ष पेश की गई किसी भी सामग्री पर अपीलीय **न्यायालय** द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है। इससे भी अधिक**, विचारण न्यायालय** के फैसले को उलटने के लिए। उच्च न्यायालय ने बार द्वारा प्रस्तुत सामग्री**,** अर्थात् अभियोजक और अन्य महिलाओं के खिलाफ कथित रूप से की गई शिकायतों को ध्यान में रखा**,** जिसमें घटना से ठीक एक सप्ताह पहले कथित रूप से **21.07.1997 को** दी गई शिकायत भी शामिल थी। उच्च न्यायालय अपील में बहस के समय प्रस्तुत उन शिकायतों पर विचार करने में सही नहीं था। भले ही अभियुक्त के आरोपों को कि अभियोजक अनैतिक चरित्र **की** है**,** सही माना जाए**,** लेकिन यह अभियुक्त व्यक्तियों को उसकी सहमति के खिलाफ बलात्कार करने का कोई अधिकार नहीं देता है। यहां तक कि सहज गुण वाली महिला भी गोपनीयता की हकदार है और किसी भी व्यक्ति के लिए उसका उल्लंघन करने के लिए खुला नहीं है और वह कानून की सुरक्षा के लिए

समान रूप से हकदार है। इसके अलावा, ऐसी महिला के साक्ष्य को केवल इसलिए दरकिनार नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह एक सहज गुण वाली महिला है। [पैरा **21, 22] [90-**जी-एच**; 91-**ए-सी**]**

1.4 उन मामलों में भी जहां यह दिखाने के लिए कुछ सामग्री है कि पीड़ित यौन संभोग की आदी थी, पीड़ित के '**तुच्छ** नैतिक चरित्र' वाली महिला होने जैसा कोई निष्कर्ष केवल उस परिस्थिति से ही नहीं निकाला जा सकता है। सरल गुण वाली महिला के साथ भी उस कारण से कोई व्यक्ति बलात्कार नहीं कर सकता था। हालांकि, उच्च न्यायालय ने अभियोजक के खिलाफ कथित रूप से की गई शिकायतों पर भरोसा करने में गलती की ताकि उसके बयान पर संदेह किया जा सके और यह माना जा सके कि आरोपी के खिलाफ एक झूठा मामला दर्ज किया गया है। अभियोजक की एकमात्र गवाही पर दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है यदि यह विश्वास को प्रेरित करती है। कानून या व्यवहार का कोई नियम नहीं है कि अभियोजक के साक्ष्य पर बिना पुष्टि के भरोसा नहीं किया जा सकता है और इस तरह यह निर्धारित किया गया है कि पुष्टि बलात्कार के मामले में दोषसिद्धि के लिए अनिवार्य नहीं है। यदि पीड़ित का साक्ष्य किसी भी बुनियादी दुर्बलता से पीड़ित नहीं है और 'संभाव्यता कारक' इसे विश्वास के योग्य नहीं बनाता है, तो एक सामान्य नियम के रूप में, चिकित्सा साक्ष्य के अलावा पुष्टि पर जोर देने का कोई कारण नहीं है, जहां मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, चिकित्सा साक्ष्य के आने की उम्मीद की जा सकती है। [पैरा **23, 24] [91-**डी, एफ-एच**; 92-**ए-बी**]**

1.5 विचारण न्यायालय, जिसे अभियोजक को देखने और निरीक्षण करने का अवसर मिला था, ने अभियोजक की गवाही को उसकी माँ के साक्ष्य, चिकित्सा साक्ष्य, एफ. एस. एल. रिपोर्ट और अन्य परिस्थितियों जैसे कि किसी भी गलत निहितार्थ के लिए उद्देश्य की अनुपस्थिति आदि द्वारा विश्वसनीय पाया। उच्च न्यायालय डी.डब्ल्यू.**1** और **2** की गवाही की सराहना करने में विफल रहा, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि अभियोजक वापस आ **गयी थी** और पड़ोसियों को गाली दे **रही थी**। डी. डब्ल्यू. **1** और **2** के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अभियोजक को पुलिस द्वारा **28.07.1997 को** लगभग **08.20** पी.एम. पर छोड़ दिया गया था। केवल यह तथ्य कि आई. पी. सी. की धारा **160** के

तहत **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 09.20 बजे दर्ज की गयी थी यह इंगित नहीं करता है कि अभियोजक और अन्य झगडालू महिलाएं 28.07.1997 को 9.30 पी एम तक पुलिस हिरासत में थी (प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 में अपराध के सम्बन्ध में) [पैराज 25, 29 और 30] [92-**बी-सी; 93-**एच**; 94-**ए-बी**]**

1.6 प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 और **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97** में व्यक्तियों के दो समूह और अधिकारियों के दो समूह शामिल थे। **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97** के संबंध में पहलू को **विचारण न्यायालय** के समक्ष भी गवाहों के सामने नहीं रखा गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **391** के तहत अपीलीय **न्यायालय** की शक्ति का प्रयोग करते हुए अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में अपील में सब कुछ लाया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97** की सामग्री पर भारी निर्भरता रखना एक सही दृष्टिकोण नहीं था। दुर्भाग्य से**,** उच्च न्यायालय संयुक्त पुलिस आयुक्त द्वारा तैयार की गई विभागीय जांच रिपोर्ट से प्रभावित हुआ। उच्च न्यायालय **द्वारा** संयुक्त आयुक्त की रिपोर्ट और उपायुक्त की रिपोर्ट पर बहुत अधिक भरोसा करना सही नहीं था**,** जिनकी **न्यायालय** के समक्ष जांच नहीं की गई थी। **[**पैरा **31, 32** और **33] [94-**सी**-**डी**,** एच**]**

1.7 संयुक्त पुलिस आयुक्त की रिपोर्ट और डीसीपी की रिपोर्ट के आधार पर**,** उच्च न्यायालय ने पुलिस अधिकारियों के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी की और **भा.दं.सं.** की धारा **193** और **195** के तहत पुलिस के खिलाफ मुकदमा चलाने का निर्देश दिया। इस तरह की अपमानजनक टिप्पणी करने और दोषसिद्धि के खिलाफ अपील में उनके खिलाफ निर्देश देने से पहले पुलिस अधिकारी न तो पक्षकार थे और न ही उच्च न्यायालय द्वारा तलब किए गए थे। **न्यायालय** के समक्ष जिन व्यक्तियों के आचरण पर विचार किया जाता है**,** उनके खिलाफ विभागीय कार्रवाई**/**अभियोजन शुरू करने के लिए किसी भी अपमानजनक टिप्पणी और निर्देश का उनके आधिकारिक **आजीविका** पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा। चूंकि उच्च न्यायालय ने **प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/1997 की जांच में शामिल पुलिस अधिकारीयों को सुनवाई का अवसर दिए बिना**

उनके हिलाफ़ आदेश परीत कर दिया था, इसलिए अपमानजनक टिप्पणि**यां ख़ारिज किये जाने योग्य हैं**। **[**पैरा **34, 36] [95-**ए**-**बी**,** डी**; 97-**डी**]**

1.8 धारा **340 दं.प्र.सं.** का उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या उस समय के दौरान **न्यायालय** में प्रस्तुत किए गए किसी दस्तावेज या साक्ष्य के संबंध में न्याय के प्रशासन को प्रभावित करने वाला कोई अपराध किया गया है जब दस्तावेज या साक्ष्य अभिरक्षक कानून में था और क्या न्याय के हित में भी ऐसी कार्रवाई करना समीचीन है जैसा कि धारा **340 दं.प्र.सं.** के तहत आवश्यक है। धारा **195 दं.प्र.सं.** के तहत अभियोजन शुरू करने का निर्देश देने से पहले**,** न्यायालय को धारा **340 दं.प्र.सं.** के तहत प्रक्रिया का पालन करना होगा और एक निष्कर्ष दर्ज करें कि "यह **न्याय** हित में समीचीन है **.....”**। हालाँकि धारा **340 दं.प्र.सं.** के तहत **न्यायालय** को व्यापक विवेकाधिकार दिया गया है**,** लेकिन इसका उपयोग सावधानी और **सतर्कता** के साथ किया जाना चाहिए। धारा **195 दं.प्र.सं.** के तहत मुकदमा शुरू करना**,** वह भी जांच कर रहे पुलिस अधिकारियों के खिलाफ**,** सही दृष्टिकोण नहीं हो सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **340** के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए दो पूर्व शर्तें हैं। **(i)** न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री को धारा **195 दं.प्र.सं.** की उप**-**धारा **(1)** के खंड **(**बी**) (i)** में त्रुटि वाले अपराध की जांच के उद्देश्य से शिकायत के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनाना चाहिए और **(ii)** न्याय के हित में यह समीचीन है कि कथित अपराध की जांच की जानी चाहिए। **[पैराज 37-39] [97-E-H; 98-F-G]**

1.9 झूठी गवाही के लिए अभियोजन केवल उन मामलों में **न्यायालयों** द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए जहां झूठी गवाही जानबूझकर **की गयी** प्रतीत होती है और अभियोजन का आदेश दिया जाना चाहिए जहां न्याय के हित में अपराधी को दंडित करना समीचीन होगा**,** न कि केवल इसलिए कि बयान में कुछ अशुद्धता है। उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि **"न्याय के हित में पुलिस अधिकारीयों के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 193 और 195 के तहत और अभियोजक**

के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 211 के तहत दंडनीय अपराधों की जांच शुरू करना समीचीन है**" पुलिस** अधिकारियों को सुनवाई का अवसर **दिए बिना** और अपीलीय **न्यायालय** के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर**,** उच्च न्यायालय पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के लिए महापंजीयक को निर्देश जारी करने में सही नहीं था और उक्त निर्देश को **अपास्त किया** जाता है। **[पैराज 41, 42] [100-**ई**-**एफ**; 101-**सी**-**डी**]**

अमरसंग नाथाजी स्वयं के रूप में और कर्ता और प्रबंधक के रूप में बनाम हार्दिक हर्षदभाई पटेल और अन्य **(2017) 1** एस**.** सी**.** सी**. 113: [2016] 12** एससीआर **80**; छाजू राम बनाम राधे श्याम और एक अन्य **(1971) 1** एससीसी **774:[1971]** पूरक एस**.**सी**.**आर**. 172-** पर निर्भर।

महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य बनाम मधुरकर नारायण मर्डीकर **(1991) 1** एस**.** सी**.** सी**. 57**; पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य **(1996) 2** एससीसी **384: [1996] 1** एस**.** सी**.** आर**. 532;** विष्णु उर्फ उंड्रिया बनाम महाराष्ट्र राज्य **(2006) 1** एससीसी **283**; राज्य बनाम एन. के. अभियुक्त **(2000) 5** एससीसी **30: [2000] 2** एससीआर **818**; एस. के. विश्वंबरन बनाम ई. कोयाकुंजू और अन्य **(1987) 2** एस**.** सी**.** सी**. 109;** मनीष दीक्षित और अन्य बनाम राजस्थान राज्य **(2001) 1** एससीसी **596:[2000] 4** पूरक एससीआर **74**; चिंतामणि मालवीय बनाम मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय **(2018) 6** एस**.** सी**.** सी**. 151-**संदर्भित।

<u>**निर्णय विधि** संदर्भ</u>

(1991) 1 एससीसी **57**	संदर्भित	पैरा **22**
[1996] 1 एससीआर **532**	संदर्भित	पैरा **23**
(2006) 1 एससीसी **283**	संदर्भित	पैरा **24** पैरा **24**
[2000] 2 एससीआर **818**	संदर्भित	पैरा **24**

(1987) 2 एस**.** सी**.** सी **109** संदर्भित पैरा **35**

[2000] 4 पूरक एस**.** सी**.** आर**. 74** संदर्भित पैरा **36**

[2016] 12 एससीआर **80** **निर्भरता** पैरा **40**

(2018) 6 एस**.** सी**.** सी**. 151** संदर्भित पैरा **40**

[1971] पूरक।एस**.** सी**.** आर**. 172 निर्भरता** पैरा **41**

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकारिता : आपराधिक अपील सं. 2299/ 2009

आपराधिक अपील संख्या 384/2000 में दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली के दिनांकित 05.05.2009 के निर्णय और आदेश से।

साथ में

आपराधिक अपील सं. 2298/2009

विक्रमजीत बनर्जी, ए.एस.जी., मुकुल गुप्ता, संजय आर. हेगड़े, सुश्री किरण सूरी, वरिष्ठ अधिवक्तागण, सत्य मित्र गर्ग, सुमित कुमार मिश्रा, तुषार गुप्ता, दीपांशु पंवार, सुश्री मंजू अग्रवाल, सुधाधर कुमार, ऋषिकेश बरुआ, सुश्री राधिका गुप्ता, सिद्धांत के., पी. के. डे, प्रणय रंजन, बी. वी. बलराम दास, प्रवीण चतुर्वेदी, सुश्री ज्योति चतुर्वेदी, सुश्री अद्या मिश्रा, अधिवक्तागण उपस्थित पक्षकारों के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

आर**.** भानुमति**, न्यायाधिपति**

1. ये अपीलें दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या 384/2000 में पारित निर्णय दिनांक 05.05.2009 के फैसले से उत्पन्न होती हैं और जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों/अभियुक्तों द्वारा दायर अपील को स्वीकार किया, जिसमे विचारण न्यायालय द्वारा पारित आई. पी. सी. की धारा 376(2) (जी) के तहत उनकी दोषसिद्धि और उन पर लगाए गए कारावास की सजा को अपास्त कर दिया गया। विवादित फैसले द्वारा, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता-पुलिस अधिकारियों

(सीए No.2298/2009) के खिलाफ आईपीसी की धारा 193 और 195 के तहत मुकदमा चलाने के लिए शिकायत दर्ज करने का निर्देश भी जारी किया।

2. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि शहीद भगत सिंह झुग्गी शिविर, कटवारिया सराय में अभियोजक (पीडब्लू-1) के पड़ोस में रहने वाले आरोपी/प्रतिवादी, 28.07.1997 को लगभग 09.00 पी एम पर उसकी झुग्गी में घुस गए और उससे बीड़ी की मांग की। उसने उन्हें कोई बीड़ी देने से इनकार कर दिया। इसके बाद, उन्होंने पानी की मांग की, जिसे उसने फिर से मना कर दिया। अभियोजक ने आरोप लगाया है कि इसके बाद प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों ने बिजली बंद कर दी और अभियुक्त/प्रत्यर्थी संख्या 2 गुंजेश चौधरी ने उसके हाथ पकड़ लिए और अन्य तीन अभियुक्तों ने उसके कपड़े फाड़ दिए और बदले में उसके साथ बलात्कार किया। अभियोजक ने आरोप लगाया है कि उसने शोर मचाया और उसके बाद बेहोश हो गई। शोर सुनकर अभियोजक की मां बशीरा खातून(पीडब्लू-3) वहाँ आई और चार अभियुक्तों/प्रतिवादियों को झुग्गी से बाहर निकलते देखा। बशीरा खातून (पीडब्लू-3) ने अभियोजक को झुग्गी के अंदर बेहोश पड़ा पाया। पुलिस नियंत्रण कक्ष (पीसीआर) वैन अभियोजक को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) अस्पताल ले गई। लगभग 11.45 पी एम पर, डॉ. मोनिका द्वारा अभियोजक की चिकित्सकीय जांच की गई और एमएलसी (Ex.-PW6/A) में यह उल्लेख किया गया कि "अभियोजक की दोनों जांघों के मध्यवर्ती पहलु पर 4 x 4 सेमी की खरोंच के निशान थे।" अभियोजक को बाईं बाजू के साथ पीछे की ओर से ब्लाउज फटा हुआ पाया गया।

3. लगभग 09.30 पी एम पर, शहीद भगत सिंह झुग्गी में कुछ झगड़े के बारे में पुलिस स्टेशन, हौज खाज पीसीआर/दक्षिण जिले में जानकारी प्राप्त हुई। एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7) कांस्टेबल खुशी राम (पीडब्लू-4) के साथ मौके पर पहुंचे और पता चला कि अभियोजक को पी. सी. आर. वैन से अस्पताल ले जाया गया है। एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7) सिपाही के साथ एम्स गए और वहां उन्हें पीडब्लू-1 फूला (अभियोजक) मिली। डॉक्टर ने पीडब्लू-1 को बयान देने के लिए उपयुक्त घोषित किया और एस.आई. जय भगवान ने आरोपी/प्रतिवादियों

द्वारा बलात्कार के आरोपों के संबंध में उसका बयान दर्ज किया। अभियोजक का बयान 29.07.1997 को 02.30 ए एम पर दर्ज किया गया और आई. पी. सी. की धारा 376 के तहत मामला दर्ज करने के लिए रुक्का 02.50 ए एम पर भेजा गया। आई. पी. सी. की धारा 376 सपठित धारा 34 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97 के तहत मामला 29.07.1997 को 03.15 ए एम पर दर्ज किया गया।

4. घटना की तारीख यानी 28.07.1997 को लगभग 11.45 पी एम पर, डॉ. मोनिका द्वारा अभियोजक की चिकित्सकीय जांच की गई थी। एम. एल. सी. (Ex.-PW6/A) में यह उल्लेख किया गया था कि अभियोजक की दोनों जांघों के मध्य पहलुओं पर 4 से. मी. x 4 से. मी. के खरोंच थे। ब्लाउज बाईं बाजू के पीछे से फटा हुआ था और एमएलसी (Ex.-PW6/A) तैयार करने के समय अभियोजक के कपड़ों को सील नहीं किया जा सका क्योंकि उसके पास अतिरिक्त कपड़े नहीं थे। बाद में उसकी पेटीकोट एकत्र की गई और रासायनिक जांच के लिए भेजी गई। अनुसन्धान पूर्ण होने पर अभियुक्त/प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था।

5. अभियुक्तों/प्रतिवादियों के खिलाफ आई.पी.सी. की धारा 376(2)(जी) के तहत आरोप तय किए गए थे, जिस पर उन्होंने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया। अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों को परीक्षित कराया और कई दस्तावेजों का प्रदर्शित किया। अभियुक्त/प्रत्यर्थियों ने धारा 313 Cr.P.C के तहत अपने बयान में कहा कि पीडब्लू-1 अभियोजक खराब चरित्र की थी और वह वेश्यावृत्ति में लिप्त थी और उन्होंने उसके खिलाफ शिकायत दर्ज कराई है और इसलिए, उन्हें बलात्कार के मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है।

6. पीडब्लू-1 अभियोजक के साक्ष्य और चिकित्सा रिपोर्ट, फोरेंसिक रिपोर्ट और अन्य साक्ष्यों पर विचार करने पर, विचारण न्यायालय ने आरोपी/प्रतिवादियों को आईपीसी की धारा 376(2)(जी) के तहत दोषी ठहराया और उनमें से प्रत्येक को दस साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। व्यथित होते हुए, अभियुक्त/प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय में

अपील दायर की। उच्च न्यायालय में, अभियुक्त/प्रत्यर्थियों ने अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए धारा 391 Cr.P.C के तहत याचिका दायर की, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया। उच्च न्यायालय ने विवादित फैसले द्वारा आई. पी. सी. की धारा 376 (2) (जी) के तहत अभियुक्तों/प्रतिवादियों की दोषसिद्धि को अपास्त करते हुए अपील को स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय ने माना कि 28.07.1997 को शाम 07.30 बजे महिलाओं के झगडे के सम्बन्ध में, जिसमे शहीद भगत सिंह झुग्गी में अभियोजक सहित योंनकर्मी भी शामिल थी, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 दर्ज की गयी थी और उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के संबंध में अभियोजक और अन्य महिलाओं को गिरफ्तार किया गया था और वे कम से कम 09.30 बजे तक पुलिस की हिरासत में थीं। इसलिए उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97 में अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह व्यक्त किया और कहा कि जब अभियोजक और अन्य महिलाएं 28.07.1997 को 08.50 पी. एम. से 10.00 पी. एम. तक पुलिस की हिरासत में थीं, तो यह काफी असंभव है कि बलात्कार की घटना 28.07.1997 को 09.00 पी. एम. पर हुई होगी जैसा कि अभियोजक ने आरोप लगाया है।

7. संयुक्त आयुक्त की रिपोर्ट (Ex.-DW6/A) और डीसीपी की रिपोर्ट के आधार पर, उच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के महापंजीयक को एस.आई. जय भगवान (पी.डब्ल्यू.-7), एस.आई. प्रेम चंद (डी.डब्ल्यू.-3) और हेड कांस्टेबल सागर चंद (डी.डब्ल्यू.-5) के विरुद्ध आई.पी.सी. की धारा 193 और 195 के तहत अपराधों के लिए संबंधित अदालत के समक्ष अभियोजन के लिए निर्देश दिया। उनके खिलाफ की गई टिप्पणियों और उनके खिलाफ मुकदमा शुरू करने के लिए शिकायत दर्ज करने के निर्देश से व्यथित, एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7), एस.आई. प्रेम चंद (डी. डब्ल्यू-3) और हेड कांस्टेबल सागर चंद (डी.डब्ल्यू-5) ने आपराधिक अपील संख्या 2298/2009 को प्राथमिकता दी।

8. अपीलकर्ता दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री विक्रमजीत बनर्जी ने प्रस्तुत किया है कि उच्च न्यायालय पीडब्लू-1 अभियोजक के साक्ष्य की सराहना करने में विफल रहा है, जिसकी पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य द्वारा की

गई है और उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 की घटनाओं पर भरोसा करने में गलती की है और प्रतिवादियों/अभियुक्तों को दोषमुक्त करने में गलती की है। विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने आगे प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने संयुक्त आयुक्त की रिपोर्ट (Ex.-DW6/A) और बहस के समय प्रस्तुत अन्य सामग्रियों पर भरोसा करने में गलती की और उच्च न्यायालय को अनुमान और आभासों पर आगे नहीं बढ़ना चाहिए था और अभिलेख पर रखे गए साक्ष्य और सामग्रियों की सराहना नहीं करके गलती नहीं करनी चाहिए थी।

9. अपीलकर्ता-पुलिस की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मुकुल गुप्ता और श्री संजय आर. हेगड़े ने हमें साक्ष्य और अन्य सामग्रियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और कहा है कि पुलिस अधिकारियों ने मामले की सही जांच की है और सुनवाई का अवसर दिए बिना, उच्च न्यायालय पुलिस अधिकारियों के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी करने और अपीलकर्ता-पुलिस अधिकारियों के खिलाफ आई. पी. सी. की धारा 193 और 195 के तहत शिकायत दर्ज करने के निर्देश जारी करने में सही नहीं था जिनके बहुत गंभीर परिणाम हैं और उनके आधिकारिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

10. हालाँकि अभियुक्त ने शुरू में एक अधिवक्ता को नियुक्त किया, लेकिन अपील की बाद की सुनवाई में उनका प्रतिनिधित्व नहीं किया गया। श्री प्रवीण चतुर्वेदी को सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति के माध्यम से प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता के रूप में नामित किया गया, जिन्होंने सावधानीपूर्वक प्रस्तुतियाँ दीं। प्रतिवादियो/अभियुक्तों का तर्क है कि पीडब्लू-1-अभियोजक आई.पी.सी. की धारा 160 के तहत दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के संबंध में 28.07.1997 को 08.50 पी.एम. से 10.00 पी.एम. के बीच पुलिस की हिरासत में थी और इसलिए, सामूहिक बलात्कार (प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97) का कथित अपराध प्रतिवादियो/अभियुक्तों द्वारा कथित तरीके से नहीं किया जा सकता था। प्रतिवादियों/अभियुक्तों का यह तर्क है कि पुलिस और अभियोजक ने प्रतिवादियों को शामिल करते हुए झूठे बलात्कार के मामले की साजिश रची है और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त/प्रतिवादियों को सही

तरीके से दोषमुक्त कर दिया और पुलिस के खिलाफ कार्रवाई शुरू करने का निर्देश दिया।

11. हमने प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों और अपीलार्थी/पुलिस अधिकारियों की दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और विवादित निर्णय और अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन किया है।

12. पीडब्लू-1-अभियोजक ने उस पर हुए बलात्कार की घटना के बारे में बात की है कि आरोपी/प्रतिवादी संख्या 2 गुन्जेश चौधरी ने उसके हाथ पकड़ लिए और अन्य तीन अभियुक्तों पंकज चौधरी, कासिम और जय लाल यादव ने उसका ब्लाउज फाड़ दिया और उसके साथ बलात्कार किया और उसने शोर मचाया और फिर उसकी माँ वहाँ आई और आरोपी व्यक्ति भाग गए। अभियोजक के साक्ष्य पर विचार करने पर, विचारण न्यायालय ने कहा कि अभियोजक के बयान पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, जहां अभियोजक की मां बशीरा खातून (पीडब्लू-3) के बयान से इसकी पर्याप्त पुष्टि होती है, जिन्होंने आरोपी को झुग्गी छोड़ते हुए देखा और न्यायालय में उनमें से दो की पहचान की।

13. अभियोजक के साक्ष्य की पुष्टि एम.एल.सी. (Ex.-PW6/A) द्वारा की जाती है। डॉ. मोनिका जिन्होंने अभियोजक की जांच एमएलसी (पूर्व-पीडब्लू6/ए) में उल्लिखित की कि "अभियोजक का ब्लाउज बाईं बाजू के पीछे से फटा हुआ पाया गया था और उसकी दोनों जांघों पर 4×4 सेमी माप के खरोंच के निशान पाए गए थे।"

14. प्रतिवादियो का तर्क है कि जब अभियोजक को आरोपी द्वारा जबरन पकड़ लिया गया था और सामूहिक बलात्कार किया गया था, तो पूरी संभावना है कि अभियोजक को बाहरी चोटें लगी होंगी और बाहरी चोटों की अनुपस्थिति अभियोजन पक्ष के संस्करण के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है। अभियुक्त/प्रत्यर्थियों का यह निवेदन कि अभियोजक घायल नहीं हुई थी, दोनों जांघों के मध्य पहलुओं पर 4×4 सेमी खरोंच की उपस्थिति से गलत साबित हुआ। ब्लाउज को बाईं बाजू के पीछे से फाड़ दिया गया था और इस तरह की चोटें बल प्रयोग से संभव थीं। इसके अलावा, अभियोजक के संस्करण की पुष्टि एम. एल. सी. (Ex.-PW6/A) द्वारा की जाती है और यह कि पाई गई चोटें बल के उपयोग से संभव हो सकती हैं। किसी भी स्थिति में, बाहरी चोटों की अनुपस्थिति सहमति के

समान नहीं है और न ही यह अभियोजन पक्ष के संस्करण को बदनाम करता है।

15. अभियोजक के साक्ष्य की पुष्टि एफएसएल रिपोर्ट (Ex.-PW7/G) द्वारा भी की जाती है जो अभियोजक के पेटीकोट पर मानव वीर्य (Ex.-1) की उपस्थिति को दर्शाता है। एफ.एस.एल. रिपोर्ट (Ex.-PW7 जी) के अनुसार, प्रदर्श 3 एस 1 ('पंकज' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े के टुकड़े); 3 एस 2 ('कासिम' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े के टुकड़े); और 3 एस 3 ('जय लाल' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े के टुकड़े) पर खून का पता चला। जैविक रिपोर्ट का परिणाम इस प्रकार हैः-

प्रदर्श	उत्पत्ति की प्रजातियाँ	एबीओ समूह टिप्पणी
3S1 ('पंकज' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े का टुकड़ा)		अनिर्णायक
3S2 ('कासिम' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े का टुकड़ा)		अनिर्णायक
3S3 ('जय लाल' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े का टुकड़ा)		'बी' समूह
वीर्य की स्थिति (अभियोजक का पेटीकोट Ex-1)		'बी' समूह

अभियोजक के पेटीकोट पर 'बी' समूह की वीर्य स्थिति की उपस्थिति जो आरोपी जय लाल (3 एस 3) के रक्त 'बी' समूह से मेल खाती है, अभियोजक के संस्करण की पुष्टि करती है। बेशक, प्रदर्श 3S1 ('पंकज' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े के टुकड़े); 3S2 ('कासिम' लेबल वाले भूरे रंग के दाग वाले जालीदार कपड़े के टुकड़े) पर सीरोलॉजी रिपोर्ट अनिर्णायक रहे; शायद नमूने के विघटन के कारण। नमूने

का इस तरह का विघटन अभियोजन के संस्करण को कमजोर नहीं करता है।

16. एफएसएल रिपोर्ट (Ex.-PW7/G) को उच्च न्यायालय द्वारा मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि एमएलसी (Ex.-PW6/A) में, यह कहा गया है कि "कपड़ों को सील नहीं किया जा सका क्योंकि रोगी के पास अतिरिक्त कपडे नहीं है", जो उच्च न्यायालय के अनुसार एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7) के बयान से असंगत थे कि "अस्पताल के ड्यूटी कांस्टेबल ने मेरे सामने पेटीकोट और स्लाइड वाले दो सीलबंद पार्सल पेश किए जिन्हें एफएसएल को भेजा गया था।" यह ध्यान देने योग्य है कि अभियोजक की जाँच डॉक्टर द्वारा पर 28.07.1997 को 11.45 पी एम पर की गई थी; जबकि एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7) ने अभियोजक की स्वस्थ मानसिक स्थिति के बारे में डॉक्टर से बयान प्राप्त करने के बाद 29.07.1997 को 02.30 ए एम पर अभियोजक का बयान पर दर्ज किया है। जिरह के दौरान अपने साक्ष्य में, अभियोजक ने कहा है कि घटना के समय उसने जो पेटीकोट पहना था, उसे पुलिस ने जब्त कर लिया था। अभियोजक के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, हम एमएलसी (Ex.-PW6/A) और एसआई जय भगवान (पीडब्लू-7) के बयान के बीच कोई विसंगति नहीं पाते हैं।

17. अभियोजक के साक्ष्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए जिसने प्रस्तुत किया कि अभियोजक को केवल 10.00 AM पर 29.07.1997 को होश आया और जबकि एस.आई. जय भगवान लगभग 02.30 AM पर 29.07.1997 को उसका बयान दर्ज नहीं कर सकते थे जैसा कि उन्होंने कहा था और यह फिर से अभियोजन मामले के बारे में गंभीर संदेह पैदा करता है। अभियोजक (पीडब्लू-1) से घटना के लगभग दो साल बाद 05.11.1999 पर न्यायालय में परीक्षित कराया गया था और हो सकता है कि वह घटनाओं को याद करने में सक्षम न हो। यह भी ध्यान देने योग्य है कि एस.आई. जय भगवान (पी. डब्ल्यू. -7) ने डॉक्टर से पूछताछ की है और डॉक्टर ने घोषणा की है कि अभियोजक बयान देने के लिए उपयुक्त थी और उसके बाद ही अभियोजक (पीडब्लू-1) का बयान (Ex.-PW1/A) दर्ज किया गया। एस.आई. जय भगवान के साक्ष्य के आलोक में कि डॉक्टर ने अभियोजक को बयान देने के लिए

उपयुक्त घोषित किया, 29.07.1997 को 02.30 ए एम पर अभियोजक के बयान की रिकॉर्डिंग के बारे में संदेह जताने वाले आरोपी के तर्क में कोई योग्यता नहीं है।

18. अगले दिन यानी 29.07.1997 को एस.आई. जय भगवान (पी. डब्ल्यू.-7) द्वारा सभी अभियुक्तों/उत्तरदाताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और अस्पताल में सुबह 11.36 ए एम से 11.38 ए एम के बीच उनकी चिकित्सकीय जांच की गई और डॉक्टर ने राय दी कि "नैदानिक परीक्षण पर, यह सुझाव देने के लिए कुछ भी नहीं है कि उक्त आरोपी व्यक्ति यौन सम्भोग करने में असमर्थ हैं"। अभियुक्त के रक्त के नमूने और स्मीयर की स्लाइड भी जब्त की गई और मामले की संपत्ति को मालखाने में जमा कर दिया गया, जहाँ से इसे एफएसएल भेजा गया। जैसा कि पहले बताया गया है, एफ. एस. एल. रिपोर्ट (Ex.-PW7/G) से पता चला है कि अभियोजक के पेटीकोट (बी समूह) पर वीर्य के दाग पाए गए थे जो आरोपी/प्रतिवादी सं. 4- जय लाल यादव के रक्त समूह से मेल खाते थे।

19. धारा 313 Cr.P.C के तहत अपने बयान में आरोपी के झूठे स्पष्टीकरण का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है। हालांकि आरोपी ने धारा 313 Cr.P.C के तहत अपने बयान में अपनी चिकित्सा जांच के बारे में स्वीकार किया है, सभी अभियुक्तों ने 29.07.1997 को 04.00 पीएम के बाद गिरफ्तारी के तरीके और समय के बारे में गलत विवरण दिया है। अभियुक्तों का यह बयान कि उन्हें 29.07.1997 को 04.00 पी एम के बाद ही गिरफ्तार किया गया था, रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अनुरूप नहीं है कि उनकी 29.07.1997 को 11.36 ए एम से 11.38 ए एम के बीच चिकित्सकीय जांच की गई थी। अभियुक्त द्वारा गलत स्पस्टीकरण उनके खिलाफ एक और उग्र स्थिति है।

20. इसके आगे, जैसा कि विचारण न्यायालय ने इंगित किया, अभियोजक का आरोपी को गलत तरीके से फंसाने का कोई मकसद नहीं था। धारा 313 Cr.P.C के तहत अपने बयान में, प्रतिवादियों/अभियुक्तों ने कहा है कि अभियोजक खराब चरित्र की थी और वह वेश्यावृत्ति में लिप्त थी जिसके बारे में उन्होंने उसके खिलाफ शिकायत दर्ज कराई है और उन्हें

मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है। जैसा कि विचारण न्यायालय ने इंगित किया, अभियुक्तों द्वारा यह दिखाने के लिए कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया कि उन्होंने अभियोजक के खिलाफ शिकायत दर्ज की है। महानंद झा (डी.डब्ल्यू.-1) ने कहा कि वह झुग्गी क्षेत्र के अध्यक्ष हैं। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजक सहित लगभग 7 से 8 महिलाएं वेश्यावृत्ति में लिप्त रही हैं, जिसके बारे में उसने शिकायत दर्ज कराई है। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि अभियुक्त अभियोजक और अन्य महिलाओं के खिलाफ ऐसी शिकायतें करने में किसी भी तरह से शामिल थे। यह कथन कि उन्होंने अभियोजक के खिलाफ शिकायत दर्ज की और इसलिए, उन्हें मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है, किसी भी अभिलेख द्वारा प्रमाणित नहीं है।

21. उच्च न्यायालय ने कहा कि विचारण न्यायालय ने यह कहते हुए गलती की कि आरोपी अभियोजक के खिलाफ पिछली शिकायतों को साबित करने में विफल रहे। ऐसा कहते हुए, उच्च न्यायालय ने अभियोजक के खिलाफ की गई कुछ शिकायतों का उल्लेख किया, जिसमें कथित रूप से 21.07.1997 पर दी गई शिकायत भी शामिल है, जिसे बार द्वारा बहस के समय पेश किया गया था। धारा 391 दं.प्र.सं. के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग बहुत सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। किसी भी अपील से निपटने में, अपीलीय न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य का उल्लेख केवल तभी कर सकता है जब उसे धारा 391 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज किया गया हो। किसी भी पक्ष द्वारा अंतराल को भरने के लिए अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई किसी भी सामग्री पर अपीलीय न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है। इससे भी अधिक, विचारण न्यायालय के फैसले को उलटने के लिए। जैसा कि विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा सही तर्क दिया गया है, उच्च न्यायालय ने बार द्वारा प्रस्तुत सामग्री को ध्यान में रखा है, अर्थात्, अभियोजक और अन्य महिलाओं के खिलाफ कथित रूप से की गई शिकायतें, जिसमें घटना से ठीक एक सप्ताह पहले कथित रूप से 21.07.1997 को दी गई शिकायत भी शामिल है। उच्च न्यायालय अपील में बहस के समय प्रस्तुत उन शिकायतों पर विचार करने में सही नहीं था।

22. जैसा कि विचारण न्यायालय ने ठीक ही कहा कि भले ही अभियुक्त के आरोपों को सही माना जाए कि अभियोजक अनैतिक चरित्र की है, लेकिन यह अभियुक्त व्यक्तियों को उसकी सहमति के बिना उसके साथ बलात्कार करने का कोई अधिकार नहीं देता है। महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य बनाम मधुरकर नारायण मर्दिकर (1991) 1 एस. सी. सी. 57 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि सरल गुण वाली महिला भी निजता की हकदार है और किसी भी व्यक्ति के लिए उसका उल्लंघन करने के लिए खुला नहीं है और वह कानून के संरक्षण के लिए समान रूप से हकदार है। इसके अलावा, ऐसी महिला के साक्ष्य को केवल इसलिए दरकिनार नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह एक सहज गुण वाली महिला है।

23. यहां तक कि ऐसे मामलों में भी जहां यह दिखाने के लिए कुछ सामग्री है कि पीडिता यौन संभोग की आदी थी, पीडिता के 'तुच्छ नैतिक चरित्र' वाली महिला होने जैसा कोई निष्कर्ष केवल उस परिस्थिति से ही नहीं निकाला जा सकता है। सरल गुण वाली महिला के साथ भी उस कारण से कोई व्यक्ति बलात्कार नहीं कर सकता था। पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य (1996) 2 एस. सी. सी. 384 में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः-

> "16. ..... भले ही अभियोजक, किसी मामले में, पहले अपने यौन व्यवहार में स्वच्छंद रहा हो, उसे किसी के साथ और सभी के साथ यौन संबंध बनाने से इनकार करने का अधिकार है क्योंकि वह किसी के द्वारा और सभी के द्वारा यौन उत्पीड़न का शिकार होने के लिए एक कमजोर वास्तु या शिकार नहीं है।" (आपूर्ति की गई) [रेखांकित जोड़ा गया]

जबकि, उच्च न्यायालय ने अभियोजक के खिलाफ कथित रूप से की गई शिकायतों पर भरोसा करने में गलती की ताकि उसके बयान पर संदेह किया जा सके और यह माना जा सके कि आरोपी के खिलाफ एक झूठा मामला दर्ज किया गया है।

24. यह अब कानून का स्थापित सिद्धांत है कि अभियोजक की एकमात्र गवाही पर दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है यदि यह विश्वास को प्रेरित करता है। [विष्णु उर्फ उंड्रिया बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 1 एस. सी. सी. 283]। इस न्यायालय के कई निर्णयों से यह अच्छी तरह से

तय हो गया है कि कानून या व्यवहार का कोई नियम नहीं है कि अभियोजक के साक्ष्य पर बिना पुष्टि के भरोसा नहीं किया जा सकता है और इस तरह यह निर्धारित किया गया है कि पुष्टि बलात्कार के मामले में दोषसिद्धि के लिए अनिवार्य नहीं है। यदि पीड़ित का साक्ष्य किसी भी बुनियादी दुर्बलता से पीड़ित नहीं है और 'संभाव्यता कारक' इसे विश्वास के अयोग्य नहीं बनाता है, एक सामान्य नियम के रूप में, चिकित्सा साक्ष्य के अलावा पुष्टि पर जोर देने का कोई कारण नहीं है, जहां मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, चिकित्सा साक्ष्य के आने की उम्मीद की जा सकती है। [राज्य बनाम एन. के. अभियुक्त (2000) 5 एस. सी. सी 30]

25. विचारण न्यायालय ने, जिसे अभियोजक को देखने और परिक्षण करने का अवसर मिला था, अभियोजक की गवाही को उसकी मां के साक्ष्य, चिकित्सा साक्ष्य, एफ. एस. एल. रिपोर्ट और अन्य परिस्थितियों जैसे किसी भी गलत निहितार्थ के लिए उद्देश्य की अनुपस्थिति आदि से विश्वसनीय पाया। हालांकि, उच्च न्यायालय को दो प्राथमिकियों के पंजीकरण में कथित समय अंतराल और दोषसिद्धि के फैसले को उलटने के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के संबंध में जांच के अन्य पहलुओं के आधार पर दोषसिद्धि के फैसले में भारी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था।

26. उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के पंजीकरण और अनुसन्धान के अन्य पहलुओं में समय के अंतर के आधार पर दोषसिद्धि के फैसले को उलट दिया। लगभग 08.05 पी एम पर डीडी सं. 67-B के माध्यम से पुलिस स्टेशन हौज खास में शहीद भगत सिंह झुग्गी में एक झगड़े के बारे में एक टेलीफोनिक जानकारी प्राप्त हुई थी। बचाव पक्ष का विशिष्ट मामला यह है कि अभियोजक आई. पी. सी. की धारा 160 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 में लगभग 10.00 पी एम तक पुलिस हिरासत में थी। एस.आई. प्रेम चंद (डी. डब्ल्यू.-3) के बयान के अनुसार, वह एक महिला कांस्टेबल सुश्री सरला टोप्पो और कांस्टेबल सागर चंद्र (डी. डब्ल्यू.-5) के साथ लगभग 08.18 पी एम मौके पर पहुंचा और अभियोजक सहित महिलाओं को अपनी झुग्गियों में सार्वजनिक स्थान पर झगड़ते हुए पाया और तुरंत

महिलाओं को गिरफ्तार कर लिया और अनुसन्धान किया और आई. पी. सी. की धारा 160 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए एक सिपाही के साथ रक्का भेजा। सूचना मिलने पर हौज खास पुलिस स्टेशन 28.07.1997 को 09.20 पी एम पर प्राथमिक संख्या 558/97 दर्ज की गई। एस.आई. प्रेम चंद (डी. डब्ल्यू.-3) ने चार महिलाओं की गिरफ्तारी और तलाशी के बारे में बताया और फिर उन्हें जमानत मुचलके पर रिहा कर दिया और वह 08.50 पी एम तक मौके पर था।

27. उच्च न्यायालय ने हैड कांस्टेबल रतन लाल (डी. डब्ल्यू.-4) के बयान पर भरोसा किया कि एस.आई. प्रेम चंद (डी. डब्ल्यू.-3) ने 08.52 पी एम पर टेलीफोन पर मामले का क्रम संख्या जानने के लिए कॉल किया और क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट 09.20 पी एम पर दर्ज की गई थी, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 में शामिल महिलाओं को 09.20 पी एम से पहले रिहा नहीं किया जा सकता था, क्योंकि जमानत मुचलकों में से एक में उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या होती है और यह भी माना कि यह बहुत कम सम्भावना है कि पुलिस चरों महिलाओं में से प्रत्येक सा सम्बन्ध में ऊपर बताये गए सभी कदम पूरे कर लेगी और उन्हें रात 08.52 पी एम तक रिहा कर देगी और प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97 में खींची गई स्थल योजना के अनुसार, सड़क और झुग्गी के बीच की दूरी ऐसी है कि अभियोजक के लिए अकेले वापस आना और 09.00 पी.एम. पर अपनी झुग्गी में रहना असंभव था।

28. बलात्कार की घटना (एफ़आईआर सं. 559/97) लगभग 09.00 पी. एम. पर हुई थी जिसके बारे में उसी पुलिस स्टेशन हौज खास को लगभग 09.30 पी.एम. पर जानकारी मिली थी। एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7) कांस्टेबल खुशी राम (पीडब्लू-4) के साथ मौके पर पहुंचे और पता चला कि अभियोजक को पी.सी.आर. वैन द्वारा अस्पताल ले जाया गया है। इसके बाद, एस.आई. जय भगवान (पीडब्लू-7) कांस्टेबल खुशी राम (पीडब्लू-4) के साथ एम्स गए और वहां अभियोजक को पाया और उन्होंने डॉक्टर से प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद 29.07.1997 पर सुबह 02.30 पर उसका बयान दर्ज किया। आई.

पी. सी. की धारा 376 के तहत मामला दर्ज करने के लिए रुक्का सुबह 02.50 पर भेजा गया था और आई. पी. सी. की धारा 34 के साथ पठित धारा 376 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97 के तहत मामला 03.15 सुबह 29.07.1997 को दर्ज किया गया था।

29. प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के समय का उल्लेख करने के बाद, उच्च न्यायालय ने कहा कि अभियोजक सहित झगड़ालू महिलाएँ कम से कम 08.50 पी एम तक पुलिस की हिरासत में थीं और यह अत्यधिक असंभव था कि अभियोजक वापस आ सकती थी और 28.07.1997 को 09.00 पी.एम. पर अपनी झुग्गी में अकेली थी और प्रतिवादियो/अभियुक्तों ने उसकी झुग्गी में प्रवेश किया और बलात्कार किया जैसा कि उसने आरोप लगाया था और यह कि 09.30 पी.एम. से पहले भी, उसे पी.सी.आर. वैन द्वारा वहाँ से उठाया गया था। इसलिए उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि एस.आई. जय भगवान, सिपाही खुशी राम (पीडब्लू-4) और अभियोजक (पीडब्लू-1) ने अभियुक्त के खिलाफ झूठा मामला गढ़ा है। इस संबंध में, उच्च न्यायालय ने संयुक्त आयुक्त की की रिपोर्ट (Ex.-DW6/A) दिनांकित 07.11.2000 और डीसीपी एस.के. गौतम की रिपोर्ट पर भरोसा किया।

30. उच्च न्यायालय का यह तर्क कि महिलाओं को आई. पी. सी. की धारा 160 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के संबंध में गिरफ्तार किया गया था और यह कि महिलाएं अनुमानित आधार पर आगे बढ़ने तक 09.20 पी.एम. तक पुलिस की हिरासत में रही होंगी। अपने साक्ष्य में, महानंद झा (डी.डब्ल्यू.-1) ने कहा है कि "उक्त महिलाएं 08.30 पी.एम. पर क्षेत्र में वापस आईं और पड़ोसियों को गाली देना शुरू कर दिया।" इसी तरह, शरबुद्दीन (डी. डब्ल्यू.-2) ने कहा है कि "पुलिस ने फूला (पीडब्लू-1) सहित उक्त महिलाओं को रिहा कर दिया और अपनी झुग्गी में वापस आने के बाद, उसने पड़ोसियों को गाली देना शुरू कर दिया। फिर, मैंने टेलीफोन पर पी.सी.आर. वैन को सूचित किया और पी.सी.आर. वैन आई और फूला को ले गई.....”। उच्च न्यायालय डी.डब्ल्यू. 1 और 2 की गवाही की सराहना करने में विफल रहा जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि अभियोजक वापस आ गयी थी और पड़ोसियों को गाली दे रही थी। डी.डब्ल्यू. 1 और 2 के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता

चलता है कि अभियोजक को पुलिस द्वारा 28.07.1997 को लगभग 08.20 पी.एम. पर पर छोड़ दिया गया था। केवल यह तथ्य कि आई. पी. सी. की धारा 160 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 को 09.20 पी.एम. पर दर्ज किया गया था, यह संकेत नहीं देता है कि अभियोजक और अन्य झगड़ालू महिलाएं 28.07.1997 को 09.30 पी.एम. तक (प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 में अपराध के संबंध में) पुलिस हिरासत में थीं।

31. व्यक्तियों के दो समूह थे और अधिकारियों के दो समूह प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 और प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/97 में शामिल हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 के संबंध में पहलू को विचारण न्यायालय के समक्ष भी गवाहों के सामने नहीं रखा गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 391 के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करते हुए अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में अपील में सब कुछ लाया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 की सामग्री पर भारी निर्भरता रखना एक सही दृष्टिकोण नहीं था।

32. दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय संयुक्त पुलिस आयुक्त द्वारा तैयार की गई विभागीय जांच रिपोर्ट (Ext.-DW6/A) से प्रभावित था जिसे कांस्टेबल धरमवीर सिंह (DW-6) द्वारा अभिलेख पर लाया गया था। पूरी रिपोर्ट का अवलोकन करने पर, हम देखते हैं कि विभागीय जांच मुख्य रूप से डायरी प्रविष्टियों और एक शिकायतकर्ता आमोद शास्त्री के बयान और एएसआई कमल देव के बयान पर आधारित थी। रिपोर्ट में, संयुक्त पुलिस आयुक्त, अन्य बातों के साथ-साथ यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बलात्कार की घटना 09.00 पी एम पर नहीं हो सकती थी, जबकि एस.आई. प्रेम चंद (DW-3) ने संकेत दिया कि अभियोजक सहित झगड़ालू महिलाओं को 08.50 पी एम पर रिहा कर दिया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि न तो पुलिस उपायुक्त एस. के. गौतम से पूछताछ की गई और न ही उक्त शिकायतकर्ता आमोद शास्त्री और ए.एस.आई. कमल देव से पूछताछ की गई। फिर भी उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उस पर भरोसा किया कि बलात्कार की घटना कथित समय और तरीके से नहीं हो सकती थी।

33. ए.एस.आई. कमल देव, जो अभियोजक को पी.सी.आर. वैन में अस्पताल ले गए थे, ने पुलिस उपायुक्त के समक्ष ऐसा बयान दिया कि जब उसने अभियोजक से पूछताछ की, तो वह होश में थी और उसने उसे बताया कि उसे पीटा गया था और उसने बलात्कार की कथित घटना के बारे में कुछ नहीं कहा था। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय द्वारा संयुक्त आयुक्त की रिपोर्ट और उपायुक्त की रिपोर्ट पर भारी निर्भरता रखना सही नहीं था, जिनकी न्यायालय के समक्ष परीक्षा नहीं की गई थी।

34. संयुक्त पुलिस आयुक्त की रिपोर्ट (पूर्व-डी. डब्ल्यू. 6/ए) और डी.सी.पी. एस.के.गौतम की रिपोर्ट के आधार पर, उच्च न्यायालय ने पुलिस अधिकारियों के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी की और आई.पी.सी. की धारा 193 और 195 के तहत पुलिस के खिलाफ अभियोजन चलाने का निर्देश दिया। इस तरह की अपमानजनक टिप्पणी करने और दोषसिद्धि के खिलाफ अपील में उनके खिलाफ निर्देश देने से पहले पुलिस अधिकारी न तो पक्षकार थे और न ही उच्च न्यायालय द्वारा तलब किए गए थे। पुलिस अधिकारियों की ओर से यह प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष केवल अनुमानों और कल्पनाओं पर आधारित हैं। उच्च न्यायालय ने आगे विभागीय जांच रिपोर्ट (Ex.-DW6/A) पर भरोसा किया, जिसका परीक्षण नहीं कराया गया था और रिपोर्ट बनाने वाले की जांच नहीं की गई थी, इसलिए कानून की नजर में इसका कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है।

35. पुलिस अधिकारियों के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी करते हुए और उनके खिलाफ अभियोजन का निर्देश देते हुए, हमारे सुविचारित विचार में, उच्च न्यायालय कानून के अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखने में विफल रहा है जिन्हें अपमानजनक टिप्पणी करने से पहले न्यायालयों को नियंत्रित करना चाहिए। न्यायालय के समक्ष जिन व्यक्तियों के आचरण पर विचार किया जाता है, उनके खिलाफ विभागीय कार्रवाई/अभियोजन शुरू करने के लिए किसी भी अपमानजनक टिप्पणी और निर्देश का उनके आधिकारिक करियर पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा। एस. के. विश्वंबरन बनाम ई. कोयाकुंजू और अन्य (1987) 2 एस. सी. सी. 109 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः-

"9. बिना सुनवाई के भी उनके खिलाफ की गई टिप्पणियों से स्तब्ध....."।

13. हमें उच्च न्यायालय द्वारा की गई एक गंभीर प्रक्रियात्मक त्रुटि की ओर भी ध्यान दिलाना होगा। यहां तक कि तर्क के लिए यह मानते हुए कि प्रत्यर्थी 2 और 3 के खिलाफ टिप्पणियों को हटाने के लिए अपीलार्थी के आचरण की जांच की आवश्यकता है और प्रतिकूल टिप्पणी की आवश्यकता है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के लिए उच्च न्यायालय से अपीलार्थी को नोटिस जारी करने और उसके खिलाफ प्रतिकूल टिप्पणी करने से पहले उसे सुनने की आवश्यकता है यदि यह आवश्यक समझा गया था। अपनी विफलता से उच्च न्यायालय अपीलार्थी को प्राथमिक न्याय देने में विफल रहा है।

14..... यू.पी. राज्य बनाम मोहम्मद नईम एआईआर 1964 एससी 703 में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः

> "यदि न्याय के प्रशासन में मुख्य महत्व का एक सिद्धांत है, तो वह यह हैः न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों की उचित स्वतंत्रता और स्वतंत्रता को बनाए रखा जाना चाहिए और उन्हें स्वतंत्र रूप से और निडरता से और किसी के अनुचित हस्तक्षेप के बिना अपने कार्यों को करने की अनुमति दी जानी चाहिए, यहां तक कि इस न्यायालय द्वारा भी। साथ ही, यह भी उतना ही आवश्यक है कि अपनी राय व्यक्त करने में न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों को न्याय, निष्पक्षता और संयम के विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। ऐसा बहुत कम होता है कि व्यापक सामान्यीकरण उसी उद्देश्य को विफल कर देते हैं जिसके लिए वे बनाए गए हैं। न्यायिक रूप से यह माना गया है कि उन व्यक्तियों या अधिकारियों के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी करने के मामले में, जिनके आचरण उनके द्वारा तय किए जाने वाले मामलों में न्यायालयों के समक्ष विचार में आता है, यह विचार करना प्रासंगिक है कि (ए) क्या वह पक्ष जिसका आचरण विचाराधीन है वह न्यायालय के

समक्ष है या उसे स्पष्टीकरण देने या बचाव करने का अवसर है; (बी) क्या टिप्पणियों को उचित ठहराने वाले उस आचरण से संबंधित अभिलेख पर सबूत है; और (सी) क्या उस आचरण पर विचार करने के लिए, उसके अभिन्न अंग के रूप में, मामले के निर्णय के लिए यह आवश्यक है। यह भी माना गया है कि न्यायिक घोषणाएं न्यायिक प्रकृति की होनी चाहिए, और आम तौर पर संयम, नियंत्रण और आरक्षण से अलग नहीं होनी चाहिए।"

आर. के. लक्ष्मणन बनाम ए.के. श्रीनिवासन और एक अन्य (1975) 2 एस. सी. सी. 466 और निरंजन पटनायक बनाम शशिभूषण कर और एक अन्य (1986) 2 एस. सी. सी. 569 (जिसमे हम में से एक पक्षकार था) में इस अनुपात का पालन किया गया है। उपरोक्त परीक्षणों के आलोक में, यह देखा जा सकता है कि इस मामले में कोई भी परीक्षण संतुष्ट नहीं है। यह वास्तव में खेदजनक है कि उच्च न्यायालय को प्रतिकूल टिप्पणियों के निष्कासन के लिए प्रत्यर्थियों 2 और 3 द्वारा दायर याचिका में न्याय प्रदान करने की कथित इच्छा में अपीलार्थी के चरित्र और व्यावसायिक क्षमता और अखंडता को प्रभावित करने वाली बहुत गंभीर प्रकृति की प्रतिकूल टिप्पणियों को उनके खिलाफ हल्के में पारित करना चाहिए था।" **[**रेखांकित करते हुए जोड़ा गया**]**।

36. मनीष दीक्षित और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2001) 1 एस.सी.सी. 596 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः-

"42. ..... इस तरह की अपमानजनक टिप्पणियों और उनके खिलाफ विभागीय कार्रवाई शुरू करने के निर्देश का उनके आधिकारिक जीवन पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ सकता है।

43. यहाँ तक कि इसके अलावा, इस न्यायालय ने बार-बार आगाह किया है कि किसी भी व्यक्ति के खिलाफ न्यायालय द्वारा कोई भी निंदात्मक टिप्पणी करने से पहले, विशेष रूप से जब ऐसी टिप्पणी संबंधित व्यक्ति के भविष्य के जीवन पर गंभीर

परिणाम सुनिश्चित कर सकती है, तो उसे प्रस्तावित टिप्पणियों या सख्ती के संबंध में मामले में सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। ऐसा अवसर मूल आवश्यकता है, क्योंकि अन्यथा आपत्तिजनक टिप्पणी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगी। इस मामले में पीडब्लू 30 (देवेंद्र कुमार शर्मा) को ऐसा मौका नहीं दिया गया था। (यू. पी. राज्य बनाम मोहम्मद नईम एआईआर 1964 एस. सी. 703, च. जाग राम, पुलिस निरीक्षक और एक अन्य बनाम हंस राज मिधा (1972) 1 एस. सी. सी. 181, आर. के. लक्ष्मणन बनाम ए. के. श्रीनिवासन और एक अन्य (1975) 2 एस. सी. सी. 466, निरंजन पटनायक बनाम शशिभूषण कर और एक अन्य (1986) 2 एस. सी. सी. 569 और कर्नाटक राज्य बनाम महापंजीयक, उच्च न्यायालय कर्नाटक (2000) 7 एससीसी 333)।"
[रेखांकित करना जोड़ा गया**]**

चूंकि उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 559/1997 की जांच में शामिल पुलिस अधिकारीयों को सुनवाई का अवसर दिए बिना उनके हिलाफ़ आदेश परीत कर दिया था, इसलिए अपमानजनक टिप्पणियां ख़ारिज किये जाने योग्य हैं।

37. जहां तक आई. पी. सी. की धारा 193, 195 और 211 के तहत अभियोजन शुरू करने के निर्देश का संबंध है, धारा 340 दं.प्र.सं. धारा 195 (1) (बी) दं.प्र.सं. में उल्लिखित अपराधों के लिए प्रक्रिया प्रदान करती है। धारा 340 दं.प्र.सं. का उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या न्याय के प्रशासन को प्रभावित करने वाला कोई अपराध उस समय के दौरान न्यायालय में प्रस्तुत किए गए किसी दस्तावेज या साक्ष्य के संबंध में किया गया है जब दस्तावेज़ या साक्ष्य अभिरक्षक कानून में था और क्या धारा 340 दं.प्र.सं. के तहत आवश्यक ऐसी कार्रवाई करना न्याय के हित में भी समीचीन है।

38. धारा 195 दं.प्र.सं. के तहत अभियोजन शुरू करने का निर्देश देने से पहले, न्यायालय को धारा 340 दं.प्र.सं. के तहत प्रक्रिया का पालन करना होगा और एक निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि "यह न्याय के

हित में समीचीन है।.."। हालाँकि धारा 340 दं.प्र.सं. के तहत न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार दिया गया है, लेकिन इसका उपयोग सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। धारा 195 दं.प्र.सं. के तहत मुकदमा शुरू करना, वह भी अनुसन्धान कर रहे पुलिस अधिकारियों के खिलाफ, एक सही दृष्टिकोण नहीं हो सकता है। पुलिस अधिकारियों के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अभियोजन शुरू करने का निर्देश पारित करने से पहले आई. पी. सी. की धारा 193, 195 और 211 के तहत अपराधों के लिए उच्च न्यायालय को धारा 340 (1) दं.प्र.सं. के तहत अनुध्यात प्रक्रिया का पालन करना चाहिए था।

39. धारा 340 (1) दं.प्र.सं. निम्नानुसार हैः-

> 340. धारा 195 में वर्णित मामलों में प्रक्रिया-(1) जब किसी न्यायालय की, उससे इस निमित्त किये गए आवेदन पर या अन्यथा यह राय है कि न्याय के हित में यह समीचीन है की धारा 195 के उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी अपराध की, जो उसे, यथास्थिति, उस न्यायालय की कार्यवाही में या उसके संबंध में अथवा उस न्यायालय की कार्यवाही में पेश की गई या साक्ष्य में दी गई दस्तावेज के बारे में किया हुआ प्रतीत होता है, जांच की जानी चाहिए तब ऐसा न्यायालय ऐसी प्रारंभिक जांच के पश्चात, यदि कोई हो, जैसी वह आवश्यक समझे -
>
> (क) उस भाव का निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है,
>
> (ख) उसका लिखित परिवाद कर सकता है,
>
> (ग) उसे अधिकारिता रखने वाले प्रथम वग्र मजिस्ट्रेट को भेज सकता है,
>
> (घ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त के हाजिर होने के लिए पर्याप्त प्रतिभूति ले सकता है अथवा यदि अभिकथित अपराध अजमानतीय है और न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है तो, अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास अभिरक्षा में भेज सकता है, और

(ङ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिर होने और साक्ष्य देने के लिए किसी व्यक्ति को आबद्ध कर सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए दो पूर्व शर्तें हैं:

(i) न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री को धारा 195 दं.प्र.सं.की उप-धारा (1) के खंड (ख) (i) में निर्दिष्ट अपराध की जांच के उद्देश्य से शिकायत के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनाना चाहिए।

(ii) न्याय के हित में यह समीचीन है कि कथित अपराध की जांच की जाए।

40. यह देखते हुए कि न्यायालय को धारा 195 (1) (बी) दं.प्र.सं. के तहत किसी अपराध की जांच के उद्देश्य से शिकायत के लिए प्रथम दृष्टया मामले के बारे में संतुष्ट होना है, इस न्यायालय ने अमरसंग नाथाजी स्वयं और कर्ता और प्रबंधक के रूप में बनाम हार्दिक हर्षदभाई पटेल और अन्य (2017) 1 एस. सी. सी. 113 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है -

"6. केवल यह तथ्य कि किसी व्यक्ति ने न्यायिक कार्यवाही में विरोधाभासी बयान दिया है, अपने आप में हमेशा दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (इसके बाद "आईपीसी" के रूप में संदर्भित) की धारा 199 और 200 के तहत अभियोजन को सही ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है; लेकिन यह दिखाया जाना चाहिए कि प्रतिवादी ने न्यायिक कार्यवाही के किसी भी चरण में जानबूझकर गलत बयान दिया है या न्यायिक कार्यवाही के किसी भी चरण में इसका उपयोग करने के उद्देश्य से झूठे सबूत बनाए हैं। उपरोक्त स्थिति सामने आने के बाद भी, न्यायालय को यह राय बनानी होगी कि समग्र तथ्यात्मक मैट्रिक्स के साथ-साथ ऐसे अभियोजन के संभावित परिणामों को ध्यान में रखते हुए, झूठे साक्ष्य और सार्वजनिक न्याय के खिलाफ अपराधों की जांच शुरू करना न्याय के हित में समीचीन है और विशेष रूप से धारा 340 (1) दंड प्रक्रिया संहिता में संदर्भित है। (देखें

के.टी.एम.एस. मोहम्मद और एक अन्य बनाम भारत संघ (1992) 3 एस. सी. सी. 178)। अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि न्याय के हित में और मामले के तथ्यों में उचित इस तरह की जांच की आवश्यकता है।

7. न्यायालय द्वारा राय बनाने की प्रक्रिया में कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि जांच की जानी चाहिए, आवश्यकता केवल उस अपराध की प्रथम दृष्टया संतुष्टि होनी चाहिए जो किया गया प्रतीत होता है। यह न्यायालय के लिए प्रारंभिक जांच करने के लिए खुला है, हालांकि यह अनिवार्य नहीं है। यदि न्यायालय अन्यथा ऐसी राय बनाने की स्थिति में है कि न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के तहत निर्दिष्ट अपराध किया गया है, तो न्यायालय प्रारंभिक जांच को समाप्त कर सकता है। अपराध के बारे में राय बनाने के बाद भी, जो कि किया गया प्रतीत होता है, यह अनिवार्य नहीं है कि एक मामले के रूप में शिकायत दर्ज की जानी चाहिए। (देखें प्रीतिश बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2002) 1 एस सी सी 253)

8. इकबाल सिंह मारवाह और एक अन्य बनाम मिनाक्षी मारवाह और एक अन्य (2005) 4 एससीसी 370 में , इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा धारा 340 दं.प्र.सं. के दायरे में बताया गया है। पैरा 23 सुसंगत विचार से संबंधित हैः

"23. धारा 340 दं.प्र.सं. में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए न्यायालय धारा 195 (1) (बी) में निर्दिष्ट अपराध के संबंध में शिकायत करने के लिए बाध्य नहीं है, क्योंकि धारा इन शब्दों से सशर्त है कि "अदालत की राय है कि यह न्याय के हित में समीचीन है"। इससे पता चलता है कि इस तरह का मार्ग केवल तभी अपनाया जाएगा जब न्याय के हित की आवश्यकता होगी और हर मामले में नहीं। शिकायत दर्ज करने से पहले, न्यायालय प्रारंभिक जांच कर सकता है और इस आशय का निष्कर्ष दर्ज कर सकता है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि धारा 195 (1) (बी) में निर्दिष्ट किसी भी

अपराध की जांच की जानी चाहिए। इस समीचीनता का निर्णय आम तौर पर न्यायालय द्वारा इस तरह के जालसाजी या जाली दस्तावेज से प्रभावित व्यक्ति को हुई चोट की मात्रा को ध्यान में रखते हुए नहीं किया जाएगा, बल्कि इस तरह के अपराध के प्रभाव या प्रभाव को ध्यान में रखते हुए न्याय के प्रशासन पर पड़ता है। यह संभव है कि इस तरह के जाली दस्तावेज या जालसाजी से किसी व्यक्ति को इस अर्थ में बहुत गंभीर या पर्याप्त नुकसान हो सकता है कि वह उसे बहुत मूल्यवान संपत्ति या स्थिति या इसी तरह से वंचित कर सकता है, लेकिन ऐसा दस्तावेज केवल न्यायालय में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए साक्ष्य का एक टुकड़ा हो सकता है, जहां भारी सबूत पेश किए गए हों और न्याय के प्रशासन की व्यापक अवधारणा पर इस तरह के साक्ष्य का प्रभाव न्यूनतम हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय न्याय के हित में शिकायत करना समीचीन नहीं समझ सकता है।"

इसी सिद्धांत को चिंतामणि मालवीय बनाम मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय (2018) 6 एस. सी. सी. 151 में दोहराया गया था।

41. इस न्यायालय द्वारा लगातार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि झूठी गवाही के लिए अभियोजन केवल उन मामलों में न्यायालयों द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए जहां झूठी गवाही जानबूझकर प्रतीत होती है और अभियोजन का आदेश दिया जाना चाहिए जहां न्याय के हित में अपराधी को दंडित करना समीचीन होगा, न कि केवल इसलिए कि बयान में कुछ अशुद्धता है। **छाजू** राम बनाम राधे श्याम और एक अन्य (1971) 1 एस. सी. सी. 774 में , इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"7. झूठी गवाही के लिए अभियोजन केवल उन मामलों में न्यायालयों द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए जहां झूठी गवाही जानबूझकर और सचेत प्रतीत होती है और दोषसिद्धि उचित रूप से संभावित या संभाव्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि झूठा सबूत देना और झूठा हलफनामा दायर करना एक बुराई है, जिस पर प्रभावी रूप से मजबूत हाथ से अंकुश लगाया जाना चाहिए,

लेकिन उचित सावधानी और सतर्कता के बिना और अनिर्णायक और संदिग्ध सामग्री पर बहुत आसानी से और बहुत बार झूठी गवाही के लिए मुकदमा शुरू करना अपने उद्देश्य को विफल कर देता है। अभियोजन का आदेश तब दिया जाना चाहिए जब न्याय के हित में अपचारी को दंडित करना समीचीन समझा जाए और केवल इसलिए नहीं कि बयान में कुछ अशुद्धता है जो निर्दोष या महत्वहीन हो सकती है। सार के मामले में जानबूझकर झूठ बोलने का प्रथम दृष्टया मामला होना चाहिए और न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि आरोप के लिए उचित आधार है। वर्तमान मामले में हमें नहीं लगता कि हमारे संज्ञान में लाई गई सामग्री इस निष्कर्ष को सही ठहराने के लिए पर्याप्त थी कि शिकायत दर्ज करना न्याय के हित में समीचीन है। उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण कुछ हद तक यांत्रिक और सतही लगता हैः यह आवश्यक न्यायिक विचार-विमर्श को नहीं दर्शाता है।"

42. उच्च न्यायालय के विवादित फैसले के अवलोकन से हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि "यह न्याय के हित में पुलिस अधिकारियों के खिलाफ आई.पी.सी. की धारा 193 और 195 के तहत और अभियोजक के खिलाफ आई.पी.सी. की धारा 211 के तहत दंडनीय अपराधों की जांच शुरू करना समीचीन है"। पुलिस अधिकारियों को सुनवाई का अवसर दिए बिना और अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, उच्च न्यायालय, हमारे विचार में, पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के लिए महापंजीयक को निर्देश जारी करने में सही नहीं था और उक्त निर्देश अपास्त किये जाने योग्य है।

43. उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 558/97 में घटनाओं के अनुक्रम और संयुक्त पुलिस आयुक्त की रिपोर्ट (Ex.-DW6/A) और पुलिस उपायुक्त की रिपोर्ट के आधार पर अपने विचारों को प्रतिस्थापित करके अभियोजक के साक्ष्य को दरकिनार करने में गलती की। उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री को ध्यान में रखते हुए गलती की। अभियोजक और अन्य महिलाओं के खिलाफ की गई कथित शिकायतों में आरोप लगाया गया है कि वे वेश्यावृत्ति में शामिल थीं। यह मानते हुए भी कि अभियोजक सहज गुण की

थी, उसे किसी के साथ भी यौन संबंध बनाने से इनकार करने का अधिकार है। विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज धारा 376 (2) (जी) के तहत दोषसिद्धि के फैसले को पलटने वाले उच्च न्यायालय के फैसले को कायम नहीं रखा जा सकता है और यह अपास्त किये जाने योग्य है।

44. आई.पी.सी. की धारा 376 (2) (जी) के तहत दोषसिद्धि के लिए अभियुक्त को कठोर कारावास की सजा दी जाएगी जो दस साल से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है। 2013 के अधिनियम 13 द्वारा संशोधन के बाद (03.02.2013 से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ), धारा 376-डी के अनुसार दस साल की न्यूनतम सजा को बढ़ाकर बीस साल कर दिया गया और दोषसिद्धि के मामले में, न्यायालय के पास न्यूनतम बीस साल की सजा देने के अलावा कोई विवेकाधिकार नहीं है। हालांकि, संशोधन से पहले, आई.पी.सी. की धारा 376 (2) के प्रावधान ने न्यायालय को एक विवेकाधिकार प्रदान किया कि "न्यायालय, निर्णय में उल्लिखित पर्याप्त और विशेष कारणों के लिए, दस से कम अवधि के लिए कारावास की सजा दे सकता है।" हालांकि न्यायालय को विवेकाधिकार प्राप्त है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम प्रतिवादी-अभियुक्त पर लगाए गए दस साल के कारावास की सजा को कम करने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए इच्छुक नहीं हैं।

45. नतीजतन, उच्च न्यायालय के विवादित फैसले को अपास्त किया जाता है और राज्य द्वारा दायर अपील को स्वीकार किया जाता है। आई.पी.सी. की धारा 376 (2) (जी) के तहत अभियुक्त-प्रतिवादी संख्या 1 से 4 (सी. ए. No.2299/2009) को दोषी ठहराए जाने के फैसले और उन पर लगाए गए दस साल के कारावास की सजा की भी पुष्टि की जाती है। प्रतिवादी-अभियुक्त संख्या 1 से 4 तक आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर शेष सजा काटने के लिए आत्मसमर्पण करेंगे, जिसमें विफल रहने पर उन्हें हिरासत में लिया जाएगा। हम अधिवक्ता श्री प्रवीण चतुर्वेदी द्वारा प्रदान की गई मूल्यवान सहायता को रिकॉर्ड पर रखते हैं, जिन्हें प्रतिवादियों/अभियुक्तों की ओर से बहस करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी सेवा समिति द्वारा नामित किया गया है।

46. पुलिस अधिकारियों (आपराधिक अपील सं.2298/2009 में अपीलार्थी) के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के उच्च न्यायालय के निर्देश को अपास्त किया जाता है और उनके द्वारा दायर अपील को स्वीकार किया जाता है।

दिव्या पांडे अपीलों का निपटारा किया गया।